शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 03 अंक– 12 अक्टूबर - दिसंबर - 2025 Impact factor– 03

21 वीं सदी के हिंदी यात्रा-वृतांत में अभिव्यक्त सांस्कृतिक परिवर्तन: वैश्वीकरण के युग की नई संवेदनाएँ

रवि कुमार झा
जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली

शोध सार-इक्कीसवीं सदी के हिंदी यात्रा-वृत्तांत पारंपरिक वर्णन से आगे बढ़कर व्यापक सांस्कृतिक, सामाजिक और वैचारिक अध्ययन का रूप ले चुके हैं। वैश्वीकरण और तीव्र तकनीकी विकास ने आधुनिक यात्री को बहुआयामी दृष्टि दी है, जिसके कारण यात्रा अब केवल स्थान-परिवर्तन का अनुभव नहीं, बल्कि विभिन्न सभ्यताओं, जीवन-शैलियों और मूल्यों के तुलनात्मक विश्लेषण का माध्यम बन गई है। इन यात्रा-वृत्तांतों में जापान, रूस, यूरोप और अन्य देशों की सामाजिक संरचनाओं, संस्कृति, श्रम-शैली, आधुनिकता के प्रभावों और जीवन-दृष्टि का सूक्ष्म अवलोकन मिलता है। साथ ही भारतीय लेखक जब विदेशी अनुभवों को देखते हैं, तो भारत की अपनी सांस्कृतिक जड़ों, परंपराओं, स्मृति और विविधता की तुलना स्वाभाविक रूप से उभरकर आती है।

डिजिटल युग में ब्लॉग, व्लॉग और सोशल मीडिया ने यात्रा-वृत्तांतों को तात्कालिकता और दृश्यात्मकता प्रदान की है, जिससे संस्कृति की समझ अब और अधिक सहज, जीवंत और साझा हो गई है। इन माध्यमों ने यात्राओं को 'लिविंग कल्चरल डॉक्यूमेंट' में बदल दिया है, जहाँ संस्कृतियाँ स्थिर न रहकर निरंतर संवाद और पुनर्संरचना की प्रक्रिया में दिखती हैं। आधुनिक हिंदी यात्रा-वृत्तांत वैश्विक अनुभवों और भारतीय सांस्कृतिक चेतना के संगम से निर्मित एक समृद्ध साहित्यिक परंपरा का निर्माण करते हैं, जो बदलते मूल्यों, सामाजिक परिवर्तनों और मनुष्य के नए अनुभव-जगत को गहराई से व्यक्त करती है।

बीज शब्द- वैश्वीकरण, सांस्कृतिक पुनर्संरचना,अंतर्सांस्कृतिक संवाद, आधुनिक जीवन-शैली, तुलनात्मक विश्लेषण, सांस्कृतिक विविधता, परंपरा-आधुनिकता, सांस्कृतिक स्मृति, वैश्विक अनुभव, सामाजिक परिवर्तन, डिजिटल माध्यम, दृश्यात्मकता, मूल्य-परिवर्तन, सांस्कृतिक चेतना

मूल आलेख-यात्रा-वृतांत के लेखक सिर्फ तीर्थयात्री या घुमक्कड़ नहीं है, वे ग्लोबल सिटीजन हैं। इक्कीसवीं शताब्दी में यात्रा केवल स्थान परिवर्तन का अनुभव नहीं रह गई, बल्कि यह संस्कृति, सभ्यता, समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था और तकनीक आदि के व्यापक अंतर्संबंधों को समझने का सशक्त माध्यम बन चुकी है। वैश्वीकरण की तीव्र गति, डिजिटल संचार के अभूतपूर्व विस्तार और अंतरराष्ट्रीय गतिशीलता ने आज के यात्री को विश्व-दृष्टि से सम्पन्न किया है। वह न केवल अपने परिवेश को साथ लेकर चलता है, बल्कि जहाँ भी पहुँचता है, वहाँ की जीवन-शैली, मूल्य-व्यवस्था, सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों और सामाजिक व्यवहारों को आत्मसात करते हुए पाठकों तक पहुँचाता है।

इसी वैश्विक परिदृश्य में 21वीं सदी का हिंदी यात्रा-वृत्तांत एक नए साहित्यिक रूप में उभरता है,जहाँ परंपरा और आधुनिकता साथ-साथ चलती हैं, जहाँ स्थानीय अनुभव 'ग्लोकल' संदर्भों से जुड़ते हैं, और जहाँ संस्कृति स्थिर न रहकर निरंतर पुनर्संरचित होती दिखाई देती है। आधुनिक यात्राएँ केवल भूगोल का विस्तार नहीं करतीं, वे अंतःसंस्कृति संवाद, पारस्परिक समझ, नए मूल्यों के उदय और पुराने मूल्यों की पुनर्परिभाषा का अवसर भी प्रदान करती हैं। डिजिटल तकनीक ने इस प्रक्रिया को और अधिक जीवंत, तात्कालिक और बहुआयामी बना दिया है। ब्लॉग, व्लॉग, सोशल मीडिया और मोबाइल फोटोग्राफी ने यात्रा-वृत्तांतों को दृश्यात्मकता, अनुभवात्मकता और भावनात्मक विस्तार के नए आयाम दिए हैं। अब यात्रा-वर्णन केवल किसी स्थल का वर्णन नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक अध्ययन—एक 'लिविंग कल्चरल डॉक्यूमेंट'—के रूप में सामने आता है।

इसी संदर्भ में 21वीं सदी के हिंदी यात्रा-वृत्तांत वैश्विक अनुभवों और भारतीय सांस्कृतिक चेतना के संगम से निर्मित एक समृद्ध साहित्यिक परंपरा का निर्माण करते हैं, जो बदलते सांस्कृतिक मूल्यों, परंपराओं, आधुनिक जीवन-शैलियों और वैश्वीकरण के प्रभावों को नई दृष्टि से देखने का अवसर प्रदान करती है। "यात्रा संसार के भ्रमणशील स्वभाव का प्रतिरूप है। प्रकारान्तर से स्वयं यह जीवन भी 'देश के असीम पथ पर 'काल' की अनन्त यात्रा का सहसम्बन्धात्मक पर्याय है। वस्तुतः यह समस्त प्राणियों की सहज अभिलाषा का अभिन्न अंग है। जिजीविषा, जिज्ञासा, अस्तित्व-रक्षण आदि के प्रयोजनों से प्रेरित होकर मनुष्य अकेले या समूह में दूर-दूर तक फैले हुए वन-पर्वत, सरिता-सागर, मरुभूमि आदि से गुजरनेवाले दुर्गम मार्गों पर सदियों से चलता रहा है। इतना ही नहीं वह आज अन्तरिक्ष स्थित अनेक ग्रह-नक्षत्रों की यात्राओं पर निकल पड़ा है।

यात्रा सम्पूर्ण सृष्टि के रूप, रस, गन्ध, स्वर आदि के अपार ऐश्वर्य के रसास्वादन की उद्दाम मानवीय लालसा का प्रतिफल है। इस यात्रा के माध्यम से मनुष्य आत्मविश्वास की प्रवृत्ति से अनुप्रेरित होता है। स्वभावतः वह अपनी यात्रा की स्मृतियों को मन-प्राणों में संजोने की अभिलाषा रखता है।"[1]

राहुल सांकृत्यायन घूमने को विश्वव्यापी धर्म मानते हैं, वो इसे सीधे संस्कृति के आदान – प्रदान से जोड़ते हैं।पुरुष के साथ महिलाओं को भी इस धर्म में बढ़ चढ़कर हिस्सा लेते हुए देखना चाहते हैं।"घुमक्कड़-धर्म सार्वदैशिक विश्वव्यापी धर्म है। अंत में किसी के आने की मनाही नहीं है, इसलिए यदि देश की तरुणियाँ भी घुमक्कड़ बनने की इच्छा रखें, तो यह ख़ुशी की बात है। स्त्री होने से वह साहस-हीन है, उसमें अज्ञात दिशाओं और देशों में विचरने के संकल्प का अभाव है—ऐसी बात नहीं है। जहाँ स्त्रियों को अधिक दासता की बेड़ी में जकड़ा नहीं गया, वहाँ की स्त्रियाँ साहस-यात्राओं से बाज नहीं आतीं। अमेरिकन और यूरोपीय स्त्रियों का पुरुषों की तरह स्वतंत्र हो देश-विदेश घूमना अनहोनी-सी बात नहीं है। यूरोप की जातियाँ शिक्षा और संस्कृति में बहुत आगे हैं, यह कहकर बात को टाला नहीं जा सकता। अगर वे लोग आगे बढ़े हैं, हमें भी उनसे पीछे नहीं रहना है। लेकिन एशिया में भी साहसी यात्रिणियों का अभाव नहीं है।"[2] इक्कीसवीं सदी के यात्रा-वृत्तांत पूर्ववर्ती समय की तुलना में बिल्कुल नए स्वरूप में उभरते हैं। वैश्वीकरण और आर्थिक सुधारों के कारण विदेश-यात्राएँ बढ़ीं तथा हवाई यात्रा सस्ती, सुरक्षित और सुलभ होने से यात्राओं का विस्तार अभूतपूर्व रूप से हुआ। इस सदी में यात्रा-वर्णन केवल स्थान-चित्रण तक सीमित नहीं रह गया, बल्कि यात्री जिस प्रदेश में पहुँचता है वहाँ की भाषा, वेश-भूषा, रहन-सहन, भोजन, परंपराएँ और जीवन-शैली जैसे सांस्कृतिक तत्वों को गहराई से समझकर प्रस्तुत करता है। डिजिटल माध्यमों के आने से अब यात्रा-वर्णन में तथ्यों के साथ-साथ व्यक्तिगत अनुभव, भावनाएँ और रोमांच भी महत्त्वपूर्ण हो गए हैं। इस दौर की भाषा सरल, सहज और सामान्य पाठक के अनुकूल है, जिसके कारण कोई भी पाठक इन विवरणों को आसानी से पढ़ और समझ सकता है। 21वीं सदी के यात्रा-वृत्तांत सांस्कृतिक अनुशीलन, व्यक्तिगत दृष्टि और तकनीकी प्रभाव—तीनों के संगम के रूप में एक नए साहित्यिक रूप में विकसित हुए हैं। डिजिटल युग के यात्रा-वृत्तांतों में संस्कृति की पुनर्संरचना अत्यंत स्पष्ट रूप में दिखाई देती है। पहले यात्रा-वर्णन मुख्यतः भू-दृश्यों, स्थलों और मार्गों तक सीमित रहते थे, परंतु डिजिटल माध्यमों—ब्लॉग, व्लॉग, सोशल मीडिया, ऑनलाइन जर्नल—के आगमन से यात्राओं का स्वरूप सांस्कृतिक अनुभवों के विस्तृत दस्तावेज़ में बदल गया है।

अब यात्री किसी नए स्थान पर पहुँचकर केवल दृश्य नहीं देखता, बल्कि वीडियो, फोटो, लाइव-स्टोरी और संवाद के जरिए वहाँ की भाषा, भोजन, वेश-भूषा, लोक-परंपरा, रीति-रिवाज, त्योहार और जीवन-दृष्टि को तत्काल साझा करता है। इस प्रक्रिया ने संस्कृति को स्थिर, पारंपरिक अवधारणा से निकालकर एक संवादशील, अनुभव-प्रधान और सहभागितापूर्ण रूप में पुनर्गठित किया है। डिजिटल प्लेटफॉर्मों ने संस्कृति की सूक्ष्म परतों—जैसे लोक-कला, हस्तशिल्प, जनजातीय परंपराएँ, स्थानीय बोलियाँ और सामुदायिक व्यवहार को भी वैश्विक निष्पादन दिया है, जिससे संस्कृति की चर्चा पहले की तुलना में कहीं अधिक व्यापक और जीवंत हो गई है।

इसी क्रम में पुराने सांस्कृतिक मूल्यों की पुनर्व्याख्या और नए मूल्यों का उदय भी देखने को मिलता है। पहले संस्कृति को 'अन्य' के रूप में देखने की प्रवृत्ति प्रबल थी,यात्री बाहरी दृष्टि से निरीक्षण करता था, परंतु डिजिटल युग में यात्रा-वृत्तांतों ने सांस्कृतिक संवेदनशीलता, सहभागिता, विविधता-स्वीकार, सह-अस्तित्व और अनुभव-साझेदारी जैसे नए मूल्यों को केंद्र में ला दिया है। पुराने मूल्य (जैसे संस्कृति को एक स्थिर, एकरूप और परंपरागत इकाई समझना) बदल रहे हैं। उनकी जगह अब संस्कृति को बदलते समय, तकनीक, वैश्वीकरण और अंतर-सांस्कृतिक संवाद के साथ विकसित होते जीवंत स्वरूप में देखने की दृष्टि मजबूत हो रही है। परिणामस्वरूप आधुनिक यात्रा-वृत्तांत संस्कृति को एक बहुआयामी, गतिशील और वैश्विक-स्थानीय (ग्लोकल) अनुभव के रूप में स्थापित करते हैं, जहाँ स्थानीय परंपराएँ नए संदर्भों में नए अर्थ ग्रहण करती हैं और नए सांस्कृतिक मूल्य समाज में स्वीकार्य होते जा रहे हैं।

रूस की परिवार व्यवस्था से भारत की परिवार व्यवस्था की तुलना करते लेखक लिखते हैं"भारत में पर्दा अब भी है, रूस में पर्दा नहीं है। और लज्जा नामक भाव भी नहीं है। यहां यौन मुक्ति है। उद्दाम सेक्स। गोपन कुछ भी नहीं। प्रायः दस में से आठ लड़कियां सिगरेट पीती है। वे देर रात को भी अकेले या अपने प्रेमी के साथ स्वच्छंद घूमती है। पिता-माता की ओर से ज्यादा बंदिश इसलिए नहीं लगाई जाती कि आखिर उनका विवाह कैसे होगा? वह तो प्रेम से ही होगी और मुक्ति के बिना प्रेम संभव नहीं है। पिता-माता द्वारा आयोजित विवाह यहां नहीं होते। दहेज भी उस रूप में नहीं होता जैसा भारत में, क्योंकि परिवार की संपत्ति में लड़की
का भी हिस्सा होता है। यह हिस्सा भारत में भी है, पर केवल दिखाने के लिए। रूस में व्यवहार में है। लड़की के विवाह के बाद लड़का लड़की के घर चला जाता है। यदि लड़की के पिता के विरूद्ध विवाह हुआ है। तो लड़की का पिता अपनी लड़की और दामाद को अलग कर देता है। तलाक यहां आम बात है। यहां वह प्रेम, राग, समर्पण, भावनात्मक लगाव और अपनापन संभव नहीं है, जो भारतीय संयुक्त परिवारों की विशेषता है। पति-पत्नी दोनों को पता है कि कभी भी तलाक हो सकता है। दोनों अपनी सुविधानुसार अपना जीवनसाथी बदल लेते है।"[3]

वर्तमान उपभोक्तावादी संस्कृति के दौर में चीन के व्यापार के प्रति तल्लीनता पर बात करते हुए मनोहर श्याम जोशी लिखते हैं "साम्यवादी चीन में शुरू से लेकर अब तक जो शास्त्रार्थ होता आया है। उनका मुख्य मुद्दा परंपरागत आदर्शवादिता बनाम आधुनिक आर्थिक समृद्धि ही है। माओ बराबर दो खतरों के प्रति सचेत रहे। पहला यह कि गरीब देश में समृद्धि के सपने जगाकर ऐसा न हो कि देश में आधुनिक बने उससे पहले ही आधुनिक उपभोग का सिलसिला छिड़ जाए और भ्रष्टाचार फैले। दूसरा यह कि कहीं क्रांतिकारियों की पार्टी, क्रांति के बाद कुर्सी पर बैठे, मौजमस्ती मारते दफ्तरशाहों की पार्टी न बन जाए। उन्हें बराबर इस बात की भी चिंता थी कि कृषि प्रधान देश में औद्योगिकरण और शहरीकरण को कहीं इतना प्रश्रय न मिल जाए कि अर्थ-व्यवस्था, समाज-व्यवस्था चरमरा उठे।"[4]

जापान अपने अनुशासित, समयनिष्ठ और सूक्ष्मता पर आधारित वर्क कल्चर के लिए विश्वभर में प्रसिद्ध है। यहाँ काम को सिर्फ दायित्व नहीं, बल्कि उत्कृष्टता की निरंतर साधना माना जाता है।

कृष्णदत्त पालीवाल लिखते हैं "सबसे दिलचस्प बात यह है कि जापान में यदि काम आज पूरा किया जा सकता है, तो जापानी कहेगा यह आज अवश्य ही पूरा हो जाना चाहिए। वह काम को टालना नहीं जानता। चाहे उसकी कितनी भी कीमत क्यों न चुकानी पड़े। जापानी 'वर्क कल्चर' ही ऐसी है। इस वर्क कल्चर के पीछे जापानी सोच का अर्थशास्त्र सक्रिय है। यहां तक कि राजनीति का चेहरा भी इस अर्थशास्त्र से अलग नहीं है। इसलिए 'आइडियल सोसायटी' की जापानी अवधारणा भारतीय आइडियल सोसायटी की अवधारणा से भिन्न है। केवल काम के बगैर तफरीह तो भारतीय ही कर सकता है, फक्कड़पन-अलमस्त।"[5]

यूरोपीय लोगों की जीने की कला के संदर्भ में कर्मेन्दु शिशिर लिखते हैं, "यह बात माननी होगी कि भौतिक जीवन को छककर जीने की कला यूरोपियनों को ही आती है। हर काम वे बड़े मनोयोग और गहरी संलग्नता से करते है। धर्म, जाति या स्त्री-पुरुष रिश्तों की गाँठें, जो अधिकांश भारतीयों को जकड़े रहती है।, उससे वे सहज मुक्त होते है।"[6].

कर्मेन्द शिशिर अपनी यूरोप यात्रा में जब पेरिस के एफिल टॉवर के पास पहुँचे, तो उन्होंने एक सूक्ष्म अनुभूति व्यक्त की—यहाँ के लोग हर काम को एक विशेष ढंग, एक तयशुदा पद्धति के साथ करते हैं। यहाँ तक कि यदि कोई व्यक्ति भीख माँगता है, तो वह भी पूरे संयोजन और व्यवस्था के साथ। लेखक का मानना है कि यूरोपीय संस्कृति में भीख माँगना किसी अपराध की तरह नहीं देखा जाता; यह वहाँ के सामाजिक व्यवहार का एक स्वीकार्य हिस्सा है।

यूरोपीय लोगों के इस व्यवस्थित ढंग का चित्रण करते हुए वे बताते हैं कि यहाँ भीख माँगना भी एक सलीके से किया जाने वाला काम प्रतीत होता है।"एक स्टॉपेज पर एक बहुत बड़े नगाड़े, एक बड़े से ढोल और पिस्टन लिये तीन मोटे-ताजे युवक चढ़ आए। एक मोटी सी युवती ने हाथ में पोर्टेबल माइक लिया और एक स्पॉनी लोकगीत छेड़ दी। उसने एक पैर पीछे कर रखा था, दूसरा आगे। गाते हुए वह आगे झुकी, फिर पीछे, ऐसा लग रहा था, वह मानो किसी स्टेज पर परफार्म कर रही हो। उस लातिनी गीत का कुछ भी हमारी समझ में नहीं आ रहा था, फिर भी उसके आलाप अच्छे लग रहे थे। आवाज के कम्पन में एक कशिश थी। नगाड़े, ढोल और पिस्टन की आवाज शायद गीत के लय में थी। कुछ पलों के लिए एक समां बंध गई। दूसरा स्टॉपेज आते ही उसने अगल-बगल गिलास बढ़ाया, कुछ ने सिक्के डाले और वे एक झटके में नीचे उतर आए।"[7]

कमलेश्वर ने अपनी पाकिस्तान यात्रा के दौरान लाहौर कॉन्फ्रेंस में 'स्मृति और संस्कृति की परंपरा' विषय पर एक महत्वपूर्ण बातें प्रस्तुत की है।"साहित्य न तो संस्कृति की परंपरा से कभी जुदा हुआ और न कभी जुदा हो पाता है। स्मृति की इस परंपरा का एक बहुत बड़ा अंग है, भूगोल ! व्यक्ति किसी भी धर्म, जाति, वर्ण, वंश और गोत्र का क्यों न हो, वह अपना जन्मस्थान यानी अपने नितान्त निजी भूगोल को कभी नहीं भूल पाता। संस्कृति-निर्माण में धर्म की अपेक्षा स्मृति की भूमिका का अंशदान ज्यादा होता है।

संस्कृति लिखी नहीं जाती और न लिखवाई जाती है। वह स्वतः निर्मित होती चलती है। वह मिट्टी, हवा, पानी और रक्त की तरह धमनियों में प्रवाहित रहती है, यही संस्कृति साहित्य का हिस्सा बन जाती है। संस्कृति मनुष्य की सामाजिक साहित्य का हिस्सा बन जाती है। संस्कृति मनुष्य की सामाजिक और सार्वजनिक चेतना का नाम है। मैं स्मृति की संस्कृति और स्मृति की परंपरा को सांस्कृतिक परंपरा की आधारभूमि मानता हूं, जिसे मैं हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की सांस्कृतिक विरासत की जड़ों के रूप में देखता हूं। संस्कृति और सभ्यता का अधिकांश इतिहास मानवीय स्मृतियों, चिन्ताओं और उसके स्वप्नों से निर्मित होता है। कोई भी संस्कृति हो, पाश्चात्य या पौर्वात्य, उसकी धमनियों में 'स्मृति का रक्त' प्रवाहमान दिखाई देता है।"[8] पश्चिम के लोगों में इस सीमित सांस्कृतिक समझ की तुलना में भारत की संस्कृति बिल्कुल विपरीत प्रवृत्ति रखती है।

भारत में विभिन्न सभ्यताओं, देशों और परंपराओं को जानने-समझने की जिज्ञासा प्राचीन काल से ही यात्राओं, ग्रंथों और संवादों के माध्यम से जीवित रही है। भारतीय सांस्कृतिक दृष्टि विविधता को अपनाने, उसे आत्मसात करने और उससे सीखने की परंपरा को महत्व देती है, जो उसे अधिक व्यापक, समावेशी और विश्व-उन्मुख बनाती है।

नरेश मेहता लिखते हैं"पश्चिम के लोगों की सबसे बड़ी कमी यह है। कि वे लोग अपने अलावा किसी भी देश, समाज, सभ्यता, साहित्य और संस्कृति के बारे में विशेष नहीं जानते। जो भी जानते है। कि वह भी कुछ ऐसा ही होती है, जैसा सैलानियों के लिए जो पुस्तिकाएँ तैयार की जाती है, उनमें बहुत काम-चलाऊ सूचनाएँ और नाम दे दिये जाते है, बस बहुत कुछ ऐसा ही लगता है।"[9] यात्रा-वृत्तांत के लेखक स्वदेशी परिवेश की सुंदर व्याख्या करते हुए भारत की सांस्कृतिक विविधता को जीवंत रूप में प्रस्तुत करते हैं। वे विभिन्न प्रदेशों की भाषा, भोजन, पहनावा, लोकजीवन और सामाजिक व्यवहार का ऐसा चित्र खींचते हैं कि प्रत्येक क्षेत्र की अपनी विशिष्ट पहचान उभर आती है। उनकी दृष्टि केवल बाहरी दृश्यों तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वे लोगों की संवेदनाओं, रीतियों और जीवन-धारणाओं को भी गहराई से पकड़ते हैं। इस प्रकार उनका वर्णन भारतीय संस्कृति की बहुरंगी छटा को एक एकीकृत, संवेदनशील और सुंदर रूप में पाठकों के सामने रखता है।अनिल यादव पूर्वोत्तर की सांस्कृतिक धरती में बॉस के महत्व को रेखांकित करते हुए बताते हैं कि यह केवल एक औज़ार या सामग्री नहीं, बल्कि वहाँ की जीवन-पद्धति का अभिन्न हिस्सा है। वे स्पष्ट करते हैं कि बॉस जहाँ एक ओर उपयोगिता, संरचना और रोज़मर्रा की ज़रूरतों को पूरा करता है, वहीं दूसरी ओर उसकी अनियंत्रित उपलब्धता और अत्यधिक निर्भरता कभी-कभी विध्वंस का कारण भी बन सकती है। इस प्रकार लेखक बॉस के योगदान और उसके संभावित विपरीत प्रभाव—दोनों का संतुलित चित्र प्रस्तुत करते हैं।

"पूर्वोत्तर में जमीन पर जो कुछ भी है, उसमें सबसे अधिक बाँस और सुपारी दिखाई देते है। बाँस यहा की जिंदगी में, शरीर में, खून ले जाने वाली धममियों की तरह शामिल है। मेघालय में सिंचाई की नालियों की तरह, मिजोरम के सुदर गाँवों में बरसाती पानी को घर तक लाने वाली पाइप लाइन, नागालैंड में चाकू की तरह और कई इलाकों में तो थाली-कटोरी की भी तरह इस्तेमाल किया जाता है। उसके फूलों के विध्वंस की ताकत भयानक है। यह बजती हुई बाँसुरी के अचानक किसी स्वर पर गरदन वाली तलवार में बदल जाने जैसा अजूबा लगता है।ये फूल बिरले आते है, लेकिन अब आते है, तो प्रकृति नया असंतुलन प्है। दा करती है। चूहे इन फूलों को खाते है, जिससे उनकी प्रजनन शक्ति असामान्य ढंग से बढ़ जाती है। लाखों की संख्या में प्है। दा हुए चूहे खेतों की फसलें, घरों में रखा अनाज, फल, सब्जियाँ समेत जो सामने आता है।, सब चट कर जाते है। साल बीतने न बीतते अकाल पड़ जाता है।"[10]

विनोद बब्बर अपने यूरोप यात्रा-वृत्तांत में वहाँ की तेज़ी से बदलती सांस्कृतिक विरासत पर गहरी चिंता व्यक्त करते हैं। वे बताते हैं कि आधुनिकता और उपभोक्तावाद की तीव्र लहर ने पारंपरिक मूल्यों, स्थापत्य -स्मृतियों और सामाजिक संवेदनाओं को धीरे-धीरे क्षीण कर दिया है। उनके अनुसार, यूरोप की आत्मा मानी जाने वाली सांस्कृतिक परंपराएँ अब बाज़ार की भागदौड़ और नवीन जीवनशैलियों के दबाव में पीछे छूटती जा रही हैं, और यही क्षरण उन्हें सबसे अधिक व्यथित करता है।"यह वैश्विक अवधारणा है कि सौंदर्य का महत्त्व सदगुणों से अधिक नहीं हो सकता, इसलिए तो स्वयं यूरोप की एक कहावत के अनुसार, It is nice to be beautiful but it is most beautiful to be nice. (सुंदर होना अच्छा है, लेकिन अच्छा होना सबसे बड़ी सुंदरता है।)। आज उस समाज में जिस प्रकार की नई परम्पराएँ विकसित हो रही है, उससे उनके समाजशास्त्री बहुत चिंतित है। परिवारों का विखंडन, आत्मकेंद्रित होते दौर पर, नशे का बढ़ता प्रचलन,उन्मुक्तता, हथियारों का अन्धाधुंध इस्तेमाल और उससे भी अधिक खतरनाक उनकी युवा पीढ़ी का एशियायी युवकों के मुकाबले कम मेहनती होना जैसी अनेक समस्याएं इनकी शानदार विरासत को बरकरार रखने में बाधक बन रही है।"[11] यूरोपीय समाज में उभरती नई प्रवृत्तियाँ, परिवारों का विखंडन, आत्मकेंद्रित जीवन-शैली, उन्मुक्तता, नशे का प्रसार, और हथियारों के बढ़ते प्रयोग, केवल सामाजिक संकट नहीं हैं, बल्कि सांस्कृतिक विघटन के संकेत भी हैं। जिस संस्कृति ने कभी सौंदर्य से अधिक सद्गुणों को मूल्य दिया, जहाँ भावना और संवेदना से ही सुंदरता मापी गई, वही संस्कृति आज गहरे संक्रमण से गुजर रही है। समाजशास्त्रियों की चिंता इसलिए बढ़ रही है क्योंकि यह परिवर्तन केवल बाहरी व्यवहार में नहीं, बल्कि मूल्यों, जीवन-दृष्टि और सांस्कृतिक आत्मा में हो रहा है। जब संस्कृति में सामूहिकता की जगह अतिशय व्यक्तिवाद ले लेता है, जब श्रम-संस्कृति कमजोर होने लगती है और युवा पीढ़ी उत्कृष्टता से दूर होती है, तब कोई भी सभ्यता अपनी स्थायी विरासत को संभाल नहीं पाती। अतः यह सामाजिक अवनति मूलतः सांस्कृतिक असंतुलन का दुष्परिणाम है, जो इस बात को रेखांकित करता है कि किसी भी समाज की निरंतरता उसके सद्गुणों, अनुशासन, श्रमशीलता और नैतिक मूल्यों पर ही टिकी होती है। इक्कीसवीं सदी के हिंदी यात्रा-वृत्तांतों में जिस सांस्कृतिक परिवर्तन, वैश्वीकरण और आधुनिक अनुभवों की चर्चा की गई है, उससे स्पष्ट होता है कि यह साहित्य अब केवल 'यात्रा का वर्णन' नहीं रह गया, बल्कि एक व्यापक सांस्कृतिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक अध्ययन का रूप ले चुका है। वैश्विक गतिशीलता ने लेखक को बहु-स्तरीय दृष्टि दी है,वह विदेशों के बदलते मूल्य, परिवार-व्यवस्थाएँ, श्रम-संस्कृति, उपभोक्तावाद, उन्मुक्तता और सामाजिक संरचनाओं का निरीक्षण करता है, तो साथ ही भारत की अपनी सांस्कृतिक जड़ों, विविधता, स्मृति और परंपरा की तुलना भी करता चलता है। यही तुलना यात्रा-वृत्तांतों को अधिक जीवंत और अर्थपूर्ण बनाती है।

इन वर्णनों में एक ओर जहाँ जापान, चीन, रूस और यूरोप के समाजों की बदलती जीवन-शैलियों, पारिवारिक मूल्यों और आधुनिकता के प्रभाव का चित्रण मिलता है, वहीं दूसरी ओर भारतीय दृष्टि, जो स्मृति, संवेदनशीलता, विविधता-स्वीकार और सांस्कृतिक संवाद पर आधारित है—एक सशक्त वैचारिक आधार के रूप में उपस्थित रहती है। डिजिटल माध्यमों ने यात्री को 'तत्काल' अनुभव-साझा करने की सुविधा दी, जिससे संस्कृति अब स्थिर न रहकर एक प्रवहमान, साझी और निरंतर पुनर्परिभाषित होती इकाई बन गई है। इस प्रकार 21वीं सदी का हिंदी यात्रा -वृत्तांत संस्कृति के बदलते अर्थ, वैश्वीकरण के प्रभाव, मूल्य-सरणियों के रूपांतरण और मानव अनुभव के नए आयामों को समग्र रूप से समेटते हुए एक ऐसे साहित्यिक रूप में उभरता है, जो न केवल स्थानों की कथा कहता है, बल्कि मनुष्य और समाज के बदलते चेहरे को भी गहराई से समझने का अवसर प्रदान करता है। यह 21 वीं सदी का यात्रा साहित्य सिद्ध करता है कि आज का यात्री केवल दर्शक नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक दूत है, जो वैश्वीकरण के दौर में 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना को आधुनिक संदर्भों में पुनः परिभाषित कर रहा है।

*****

संदर्भ सूची –
1.यात्रा सोहित्य का महत्व,शशिशेखर तिवारी,हिंदी यात्रा साहित्य,लोक भारती प्रकाशन,पृष्ठ 11
2. घुमक्कड़ शास्त्र,राहुल सांकृत्यायन,राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रकाशन 1949,पृष्ठ 84
3.एक सागर और,दिशा प्रकाशन, दामोदर खड़से,दिल्ली-2008,पृष्ठ 29
4.क्या हाल है चीन के , मनोहर श्याम जोशी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली- 2006,पृष्ठ 103
5. जापान में कुछ दिन, कृष्णदत्त पालीवाल,किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली-2003, पृष्ठ 87
6.लो हम भी घूम आए, कर्मेंदु शिशिर,अनन्य प्रकाशन, दिल्ली-2013 पृष्ठ 94
7. लो हम भी घूम आए,कर्मेंदु शिशिर,अनन्य प्रकाशन, दिल्ली-2013,पृष्ठ 18
8.आंखों देखा पाकिस्तान, कमलेश्वर,राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 2006,पृष्ठ 35, 37
9.कितना अकेला आकाश, नरेश मेहता,भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन नई दिल्ली- 2003,पृष्ठ 46
10.वह भी कोई देस है महाराज, अनिल यादव,अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद-2012,पृष्ठ 47
11.इंद्रप्रस्थ से रोम,विनोद बब्बर,नवशिला प्रकाशन, नई दिल्ली-2013,पृष्ठ 76